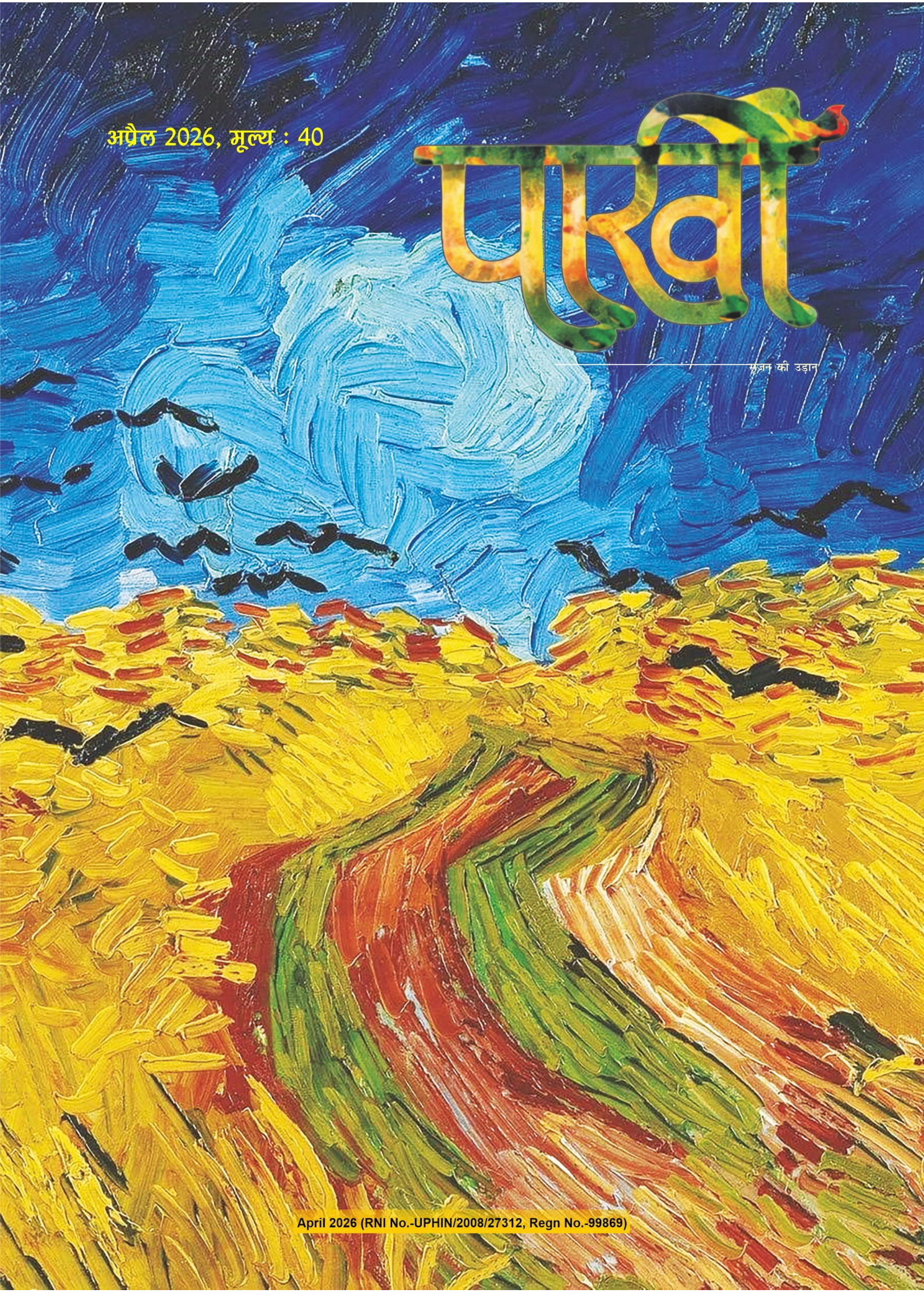

अप्रैल 2026, मूल्य : 40

परिंदे

सृजन की उड़ान

April 2026 (RNI No.-UPHIN/2008/27312, Regn No.-99869)

संपादक

अपूर्व

महाप्रबंधक

अमित कुमार

शब्द-संयोजन

उषा ठाकुर

रेखाचित्र : शशिभूषण बडोनी, संदीप राशिनकर, रोहित पाठक

वर्ष : 18, अंक 7, अप्रैल, 2026

मूल्य :

प्रति	:	रु. 40.00
वार्षिक, रजिस्टर्ड डाक सहित	:	रु. 1000.00
आजीवन, रजिस्टर्ड डाक सहित	:	रु. 10000.00

भुगतान इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसाइटी के नाम से किया जाए।
भुगतान ऑनलाइन या सीधे बैंक में भी जमा कर सकते हैं।
बैंक : UNION BANK
खाता संख्या : 520101255568785
IFSC : UBIN **0905011**
बैंक शाखा : जी-28, सेक्टर-18, नोएडा-201301
उत्तर प्रदेश

प्रकाशक

इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसाइटी
बी-107, सेक्टर-63, नोएडा-201309
गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश
दूरभाष : 0120-4330755
editor@pakhi.in
pakhimagazine@gmail.com
www.facebook.comèpakhimagazine
Web portal : www.pakhi.in

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अंतर्गत विचारणीय। स्वामित्व इंडिपेंडेंट मीडिया इनिशिएटिव सोसाइटी के लिए प्रकाशक, मुद्रक नारायण सिंह राणा द्वारा चार दिशाएं प्रिंटर्स प्रा.लि. जी-39, नोएडा से मुद्रित एवं बी-107, सेक्टर 63, नोएडा से प्रकाशित।

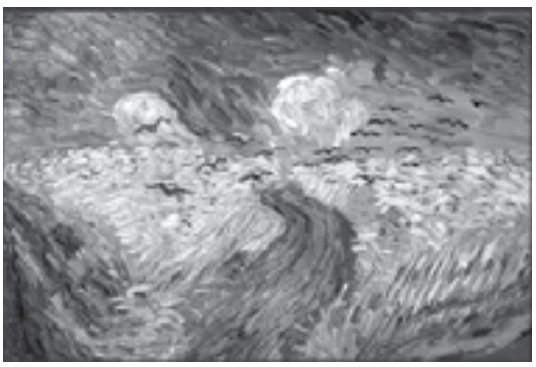

विन्सेंट वैन गॉग (Vincent Van Gogh) की यह पेंटिंग 1890 में बनाई गई थी और इसे उनके अंतिम समय की सबसे भावनात्मक कृतियों में गिना जाता है। सुनहरे गेहूं के विशाल खेत, ऊपर मंडराते काले कौवे और उथल-पुथल भरा आकाश, ये तीनों मिलकर एक ऐसा दृश्य रचते हैं जो प्रकृति की सुंदरता के साथ-साथ उसकी बेचैनी और अस्थिरता को भी दर्शाता है।

इस पेंटिंग को 'पाखी' के मुख पृष्ठ के लिए पृथ्वी दिवस के अवसर पर हम इसलिए कर रहे हैं क्योंकि यह केवल प्रकृति की सुंदरता का चित्रण नहीं है, बल्कि उसके भीतर छिपे संकट और असंतुलन की ओर भी संकेत करती है। गेहूं के खेत जीवन, पोषण और समृद्धि के प्रतीक हैं, जबकि काले कौवे और अशांत आकाश हमें यह याद दिलाते हैं कि यदि हमने प्रकृति के साथ संतुलन नहीं बनाए रखा, तो यही सौंदर्य संकट में बदल सकता है।

इस तरह यह पेंटिंग पृथ्वी दिवस के संदेश-'प्रकृति की रक्षा ही मानवता की रक्षा है'-को बेहद गहराई और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती है।

अनुक्रमणिका

संपादकीय/अपूर्व

पुरस्कार, विवाद और ट्रोल युग का द्वंद्व 4

चिट्ठी आई है 6

लंबी कहानी/कहानियां

नेशन फर्स्ट	:	मुकेश कुमार	7
आग	:	दयानंद पांडेय	16
लड़कियों की हंसी	:	उर्मिला शिरीष	18
शासन-अनुशासन	:	सुषमा मुनींद्र	25
अक्स	:	पद्मराग मणि	32
गलबहियां	:	अशोक गुजराती	38

कविताएं/ग़ज़लें/पद

राजेंद्र उपाध्याय की कविताएं 43

राहुल राजेश की कविताएं 45

अनुभूति गुप्ता की कविताएं 47

यश मालवीय के पद 48

खुशबू शर्मा की कविताएं 49

अमित झा की कविताएं 51

अच्युतम यादव की ग़ज़लें 53

मृत्युंजय कुमार मनोज की कविता 54

सचिन कुमार की कविताएं 54

अनवर शमीम की कविताएं 55

मूल्यांकन

अपने हिस्से के दुख: विजया सती 57

विवाहेत्तर प्रेम की व्यथा-कथा : अनिता रश्मि 60

मधुबनी की मुनिया : विभा रानी के संस्मरणों की अकादमिक समीक्षा : संदीप तोमर 63

व्यक्तित्व-निरूपण और भाषाई विमर्श को नई दृष्टि देती किताब: 'कल फिर जब सुबह होगी': मुकेश नौटियाल 67

'कांच के पार दुनिया' देखने की जद्दोजहद करती कविता : आशीष दशोत्तर 69

आलेख

हिंदी भाषा-साहित्य और रवींद्रनाथ : टी.पी. पोद्दार 73

स्थाई स्तंभ

कल्पित कथन

कथाकार शिव कुमार शिव रचनावली का किस्सा : कृष्ण कल्पित 81

सत्याग्रह

समाज की धारा को कौन प्रदूषित कर रहा है? : प्रियदर्शन 84

पाखी संवाद–जहां शब्द डरते नहीं / प्रतिक्रियाएं

निराले थे महाप्राण निराला 86
शताब्दी की विलक्षण कवयित्री 89
करुणा, क्रांति और मानवता के महागायक 91
श्रम, संघर्ष और मानव गरिमा के कथाकार 92
रंग, तुक और कल्पना के जादूगर 94
काफ्का आज क्यों जरूरी हैं? 96
पियेर पाउलो पसोलिनी 97
जादुई यथार्थ के शिल्पी 100
क्या आपको 'The Wind in the Willows' याद है? 101
वह लेखक जिसने शब्दों को आजाद कर दिया 103
सौंदर्य, संवेदना और सत्य के कवि 104
सत्ता के विरुद्ध हंसी का प्रतिरोध 106
करुणा, चेतना और मौन प्रतिरोध की महागाथा 107
राह चुनने की समझ समझाने वाला कवि 109
सहजता की ताकत, प्रतिरोध की नैतिकता और शब्दों का सच 111

पुरस्कार, विवाद और ट्रोल युग का द्वंद्व

साहित्य अकादमी ने जैसे ही अपने वार्षिक पुरस्कारों की घोषणा की और ममता कालिया को सम्मानित किया गया, तो मेरे भीतर स्वाभाविक रूप से प्रसन्नता का भाव आया। यह प्रसन्नता केवल एक लेखक के सम्मानित होने की नहीं थी, बल्कि उस परंपरा की थी जिसमें शब्द, संवेदना और विचार को अब भी महत्व दिया जाता है। लेकिन इसी प्रसन्नता के समानांतर एक और परिचित दृश्य उभरता है, सोशल मीडिया पर सवालों, आरोपों, कटाक्षों और ट्रोलिंग का शोर। यह शोर अब इतना सामान्य हो चुका है कि वह किसी भी पुरस्कार की घोषणा का अनिवार्य हिस्सा लगता है। और यही वह बिंदु है जहां से मेरी उलझन शुरू होती है। मैं बार-बार यह सोचने को विवश होता हूं कि आखिर ऐसा क्यों है कि जैसे ही किसी को सम्मान मिलता है, हम उसे स्वीकार करने की बजाय उसकी वैधता पर संदेह करने लगते हैं।

ममता कालिया को उनके लेखन, विशेषकर 'जीते जी इलाहाबाद' जो कुछ हद तक रवींद्र कालिया पर केंद्रित कृति है के लिए सम्मानित किया गया है, और इसके साथ ही यह विमर्श शुरू हो गया कि क्या यह चयन उचित है। और देखते ही देखते चर्चा इस दिशा में मुड़ गई कि रवींद्र कालिया के साहित्य में क्या कमियां थीं, उनका योगदान कितना बड़ा था, और क्या वे इस तरह के पुनर्मूल्यांकन के योग्य थे। यह प्रवृत्ति मुझे हमेशा विचलित करती है। किसी एक को सम्मानित करने के लिए दूसरे को कठघरे में खड़ा करना आखिर किस प्रकार की बौद्धिक संस्कृति का परिचायक है? क्या हम इतनी असहिष्णुता के दौर में पहुंच चुके हैं कि किसी की उपलब्धि हमें अपने ही साहित्यिक विश्वासों के लिए चुनौती लगने लगती है?

मैं यह स्वीकारता हूं कि पुरस्कारों की दुनिया पूरी तरह निष्पक्ष नहीं होती। साहित्य अकादमी जैसी संस्थाओं के भीतर भी मनुष्य ही निर्णय लेते हैं, और मनुष्य अपनी सीमाओं, अपने पूर्वाग्रहों और अपने सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से पूरी तरह मुक्त नहीं होता। यह संभव है कि कहीं न कहीं विचारधाराएं, संबंध या परिस्थितियां चयन को प्रभावित करती हों। यह भी संभव है कि कुछ उत्कृष्ट कृतियां नजरअंदाज हो जाएं और कुछ अपेक्षाकृत कम चर्चित कृतियां सम्मानित हो जाएं। लेकिन इन संभावनाओं के आधार पर हर पुरस्कार को संदिग्ध मान लेना क्या एक तरह का बौद्धिक सरलीकरण नहीं है? क्या यह हमारे भीतर पनपती उस प्रवृत्ति का संकेत नहीं है, जहां हम जटिल वास्तविकताओं को आसान आरोपों में बदल देना चाहते हैं?

दरअसल समस्या पुरस्कारों में कम और हमारी प्रतिक्रिया में अधिक दिखाई देती है। एक समय था जब साहित्यिक असहमति का अर्थ गंभीर बहस होता था। लेखक एक-दूसरे की कृतियों पर लिखते थे, आलोचक विस्तार से तर्क प्रस्तुत करते थे, और पाठक भी उस संवाद का हिस्सा बनते थे। आज वह संवाद सिकुड़कर प्रतिक्रिया में बदल गया है, और प्रतिक्रिया भी ऐसी जो अक्सर बिना पढ़े, बिना समझे और बिना जिम्मेदारी के व्यक्त की जाती है। सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति को लोकतांत्रिक बनाया है, इसमें कोई संदेह नहीं, लेकिन उसी के साथ उसने आलोचना को तात्कालिक, आक्रामक और कई बार सतही भी बना दिया है। अब किसी पुस्तक को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है, केवल उसके बारे में बनी हुई धारणा को दोहराना ही पर्याप्त है।

जब मैं इस पूरे परिदृश्य को देखता हूं तो मुझे लगता है कि हम साहित्य को उसके मूल स्वभाव से दूर ले जा रहे हैं। साहित्य प्रतिस्पर्धा का क्षेत्र नहीं है, यह संवाद का क्षेत्र है। यहां एक लेखक की उपलब्धि दूसरे की पराजय नहीं होती, बल्कि वह उस समृद्ध परंपरा का विस्तार होती है जिसमें अनेक स्वर, अनेक दृष्टिकोण और अनेक अनुभव एक साथ मौजूद रहते हैं। लेकिन आज हम इसे एक ऐसी दौड़ में बदल चुके हैं जहां हर पुरस्कार एक 'जीत' और हर उपेक्षा एक 'हार' बन जाती है। इसी मानसिकता से यह विचार जन्म लेता है कि यदि किसी एक को सम्मान मिला है, तो यह किसी दूसरे के साथ अन्याय है, और यही सोच धीरे-धीरे ट्रोलिंग का रूप ले लेती है। यह समस्या केवल भारत तक सीमित नहीं है। दुनिया भर में साहित्यिक पुरस्कारों के साथ विवाद जुड़े रहे हैं। नोबेल समिति द्वारा दिए जाने वाले नोबेल पुरस्कार को ही देख लीजिए। लियो टॉलस्टॉय जैसे महान लेखक को यह सम्मान कभी नहीं मिला जबकि उनके साहित्यिक योगदान पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता। जेम्स जॉयस का नाम भी इसी सूची में आता है। इसके विपरीत, जब 2016 में बॉब डिलन को यह पुरस्कार दिया गया, तो पूरी दुनिया में यह बहस छिड़ गई कि क्या एक गीतकार को साहित्य का सर्वोच्च सम्मान दिया जाना चाहिए। इस बहस में भी वही पैटर्न दिखाई देता है, सम्मान के साथ-साथ संदेह का जन्म।

बुकर पुरस्कार भी इससे अछूता नहीं रहा है। कई बार यह आरोप लगा कि जूरी ने लोकप्रियता की बजाय प्रयोगधर्मिता को तरजीह दी, तो कई बार यह कहा गया कि उन्होंने सुरक्षित और पारंपरिक विकल्प चुने। लेकिन इन सभी विवादों के बावजूद यह भी उतना ही सच है कि इन पुरस्कारों ने साहित्य को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका